THE TIMES OF INDIA

Date: 22-05-24

Warranted or Not

International Criminal Court is a good example of global institutions' limitations in fractured geopolitics

Editorial

The International Criminal Court (ICC) faces its moment of reckoning. Set up to prosecute war crimes, it can issue arrest warrants against individuals if national courts can't/won't do it. ICC's testing its power. Last year, it issued an arrest warrant against Vladimir Putin and now its prosecutor has applied for warrants against five consequential figures in the Israel-Hamas conflict, including Benjamin Netanyahu. The catch here is that ICC can bypass national courts but not enforcement agencies if arrests have to be made.

'World order' | The pivotal moment for global legal institutions was the San Francisco conference in 1945 when the UN charter and the statute of the International Court of Justice (ICJ) were adopted. The euphoria of the founding moment contained a kernel of truth. The world order would be hierarchical. UN's 'Big Five' would get exclusive veto powers because they bore the primary responsibility to hold up the order. And also disturb it, as subsequent events showed.

Shifting equilibrium | A rules-based order has two parts. There are well-intentioned ideas to prevent conflict and promote economic cooperation. There's also the reality of power exercised by sovereign states. Their interaction produces an equilibrium. That equilibrium is increasingly under pressure, leading to the architecture falling apart. Be it UN or WTO, multilateral bodies are now mostly ineffective.

Fragmented order | Move aside World Bank and IMF. China is today the world's largest official creditor. A 2021 study looked at contracts between Chinese state enterprises and 24 sovereign borrowers. They're designed to weaken collective action on debt restructuring by groups like the Paris Club. The world order is fragmenting and there's not much sympathy because of past institutional hypocrisy. As for ICC, after years of prosecuting African warlords, it's facing a new reality.

THE ECONOMIC TIMES

Date: 22-05-24

Ghar Wapsi, a Start Up the Right Path

India's regulatory regime has also helped

ET Editorials

'Reverse flips' by Indian startups such as Pine Labs underscore welcome structural shifts in the ecosystem. Startups incorporated in India choose to transfer ownership to holding companies in the US or Singapore because it's easier to do business there, to benefit from tax arbitrage and to gain greater access to capital. The decision to flip, or reverse flip, is shaped by outbound and inbound investment rules, apart from tax implications. Principally, though, the overriding concern for a startup remains its valuation before and after listing. This is the key reason late-stage Indian startups, too small to generate institutional investor interest abroad, choose to return home. Even if that means forgoing tax benefits on accumulated losses and vesting periods for sweat equity.

India's regulatory regime has also facilitated shifts in both directions. Outbound investments were made easier by regulators clarifying what constitutes bona fide business when a startup intends to relocate abroad. Inbound investments also face more clarity over transfer of assets, apart from overall lower sectoral restrictions on foreign investments. India's offshore investment hub in Gujarat allows companies to relocate with a greater degree of certainty over treatment of beneficial ownership than provided through treaty benefits. With progressive harmonisation of playing rules in GIFT IFSC and other offshore jurisdictions, the reverse flip may become easier to accomplish.

The pull of Indian investors' appetite for startups was established in fancy listing valuations of a clutch of unicorns a couple of years ago that didn't sustain in the secondary market. Regulators have since increased their vigil on VC valuation methodologies. The tax structure for early-stage startups is designed to encourage fair valuation. With guard rails in place, regulators derive greater comfort in exposing retail investors to the startup ecosystem. PE, too, finds an easier exit with India's strong investor investment and is instrumental in guiding the domicile decision. All of which should add momentum to the trend of reverse flips.

दैनिक भास्कर

Date: 22-05-24

बिना आधार गिरफ्तारी वाले सख्त कानूनों पर नकेल

संपादकीय

केंद्रीय जांच एजेंसियों द्वारा यूएपीए पीएमएलए और आतंक -विरोधी एक्ट में बगैर आधार (न कि कारण) बताए गिरफ्तार करना और महीनों-वर्षों जेल में रखना सामान्य प्रक्रिया बन गई है। यूएपीए जैसी सख्त दफा में गिरफ्तार हुए एक न्यूज पोर्टल के पत्रकार को रिहा करते हुए सुप्रीम कोर्ट ने सरकार की शक्तियों पर अंकुश लगाया है। दरअसल कोर्ट

ने अपने 42 पेज के फैसले में सरकार को याद दिलाया कि विगत 3 अक्टूबर, 2023 को इसी कोर्ट ने पीएमएलए में बगैर आधार बताए गिरफ्तारी को अवैध करार दिया था। अब वर्तमान बेंच ने यूएपीए में पत्रकार की गिरफ्तारी को संविधान के अनुच्छेद 22 (1) (जिसमें बगैर आधार बताए गिरफ्तारी के खिलाफ संरक्षण है) सहित अनुच्छेद 20 और 21 का भी उल्लंघन माना है। उपरोक्त दोनों फैसलों से एक बार फिर सरकारों की शक्तियों के विस्तार की ललक पर विराम लगा। इन दोनों कानूनों में जमानत मिलना हाल के दिनों में नामुमकिन होने लगा था क्योंकि यूएपीए की धारा 43डी 5 और पीएमएलए की धारा 45 ने न्यायपालिका के हाथ बांध दिए थे। चिंता की बात यह थी कि बगैर आरोप तय हुए किसी को भी विचाराधीन कैदी के रूप में वर्षों जेल में रखना सरकार की एजेंसियों का नया हथियार बनता जा रहा था। एनसीआरबी की रिपोर्ट कहती है कि 2021 के मुकाबले साल 2022 में यूएपीए के 23 प्रतिशत मामले बढ़ गए, जबकि पिछले दस सालों पीएमएलए के मामले भी बढ़ गए, जबकि सजा की दर दो प्रतिशत से भी कम रही। वर्ष 2021 में 12 हजार लोग इन सख्त धाराओं में गिरफ्तार हुए। आज देश भर में 76 प्रतिशत कैदी विचाराधीन श्रेणी में हैं। 84 वर्षीय स्टेन स्वामी इन्हीं दफाओं के तहत बगैर न्याय मिले जेल में ही मर गए। इन धाराओं में गिरफ्तार 98 प्रतिशत लोग कोर्ट द्वारा निर्दोष पाए जाते हैं। सुप्रीम कोर्ट ने संविधान को कानून के ऊपर रखा।

Date: 22-05-24

वो कौन-सी ताकतें हैं जो हमारे चुनावों में दखल देना चाहती हैं ?

अभिजीत अय्यर मित्रा, (सीनियर फेलो,आईपीएस)

वे दिन गए, जब अमेरिका की चर्चित खुफिया एजेंसी सीआईए सीधे ही दूसरे देशों में हो रहे चुनावों में पैसा लगाती थी। वास्तव में छोटे देशों को छोड़कर ये तरीके बिल्कुल कारगर साबित नहीं हुए थे। भारत में तो यह कभी नहीं चलने वाला, चाहे कितने ही बेहतरीन प्रयास क्यों न किए जाएं। फिर भी इसका मतलब यह नहीं है कि हमारे चुनावों में हस्तक्षेप करने की कोशिशें नहीं की जा रही हैं। सवाल है कि ये लोग कौन हैं और उनकी मंशा क्या है?

हमारे चुनावों में हस्तक्षेप करने वाले लोगों का पहला और सबसे शक्तिशाली समूह स्पेकुलेटिव- इंवेस्टर्स का है। इनमें जॉर्ज सोरोस जैसे हेज फंड मैनेजर्स का नाम लिया जा सकता है। मानवाधिकारों और लोकतंत्र के प्रति अपने घोषित समर्थन के बावजूद उनकी प्राथमिकता अपने मुनाफों पर रहती है। उनके लिए 'मानवाधिकार' शब्द देशों में अस्थिरता फैलाने का एक उपकरण है- क्योंकि जितना अधिक अस्थिर देश होगा, उसमें उतनी ही अधिक अराजकता, प्रणालीगत त्रुटियां, रिश्वतखोरी आदि होगी। उन्हें इकोनॉमी क्रैश से मुनाफा होता है। भारत उन अर्थव्यवस्थाओं में से है, जिससे वे लाभ कमाना चाहते हैं, लेकिन ऐसा करने में अभी तक विफल रहे हैं। यही कारण है कि सोरोस और पियरे ओमिडयार जैसे लोग नियमित रूप से अराजकतावादी न्यूज-आउटलेट और गैर सरकारी संगठनों में निवेश करते हैं- मुख्य रूप से ऐसे दीर्घकालिक नैरेटिव को बनाए रखने के लिए, जो स्थिरता कायम रखने में सक्षम किसी भी राजनेता या पार्टी की चुनावी संभावनाओं को नुकसान पहुंचाते हों।

दूसरे तरह के लोग विदेशी उद्योगपति- विशेष रूप से बड़े तकनीकी प्लेयर्स हैं। उनकी प्रेरणाएं अपने एकाधिकार को कायम रखने की हैं। निश्चित रूप से अमेजन भारत में बहुत पैसा कमाता है। लेकिन मार्केट पर उसका एकाधिकार है, क्योंकि फ्लिपकार्ट इतना आगे नहीं बढ़ सका है और ईबे फैशन से बाहर है। ऐसे में उसके मालिक जेफ बेजोस भारत पर निशाना साधने के लिए वॉशिंगटन पोस्ट का उपयोग क्यों करते हैं? मार्क जकरबर्ग का फेसबुक और इंस्टाग्राम सरकार समर्थक सामग्री को क्यों सेंसर करता रहता है और अराजकतावादियों को क्यों बढ़ावा देता है? गूगल अपनी सर्च और अपने सहायक यूट्यूब पर एक जैसे कंटेंट को प्राथमिकता क्यों देता है?

इन सब सवालों का जवाब बहुत सरल है। अपने जीवनकाल में हमने तकनीक और सेवाओं दोनों को बढ़ते और अप्रचलित होते देखा है। जब हम बड़े हुए तो हमें मोबाइल फोन पेश किए गए और रातों-रात नोकिया और एरिक्सन घर-घर में पहचाने जाने वाले नाम बन गए। लेकिन हमने अपने जीवनकाल में ही इन कंपनियों को ध्वस्त होते भी देखा है। इसी तरह हॉटमेल और याहू जैसी मेल सेवाएं, अल्टा विस्टा जैसे सर्च इंजन, ऑर्कुट और आईसीक्यू जैसे सोशल मीडिया भी गायब हो गए। क्यों? क्योंकि स्थिर और नियमित दुनिया में इनोवेशन की गति तेज और क्रूरतापूर्ण होती है। जबकि टेक दिग्गज बेदखल होने से बचने के लिए अस्थिरता को बढ़ावा देते हैं और इनोवेशन की गति को धीमा करते हैं। ट्विटर, फेसबुक, यूट्यूब, अमेजन (जो एडब्ल्यूएस के माध्यम से वेब होस्टिंग को नियंत्रित करता है) और गूगल ने इसे अमेरिकी चुनावों में सफलतापूर्वक कर दिखाया था। लेकिन उन्हें भारत में अभी तक सफलता नहीं मिली है।

तीसरे समूह में पश्चिमी सरकारें हैं। हालांकि पश्चिम सामंतवादी युग में लौट रहा है, जहां राजा (सरकारों) की तुलना में बैरन और नोबल्स (कॉर्पोरेट्स) अधिक शक्तिशाली हो गए हैं। आज सोरोस, ओमिडयार, जकरबर्ग, बेजोस जो कर पा रहे हैं, उनकी तुलना में ये सरकारें अपने पूर्ववर्तियों के आसपास भी नहीं हैं। बाइडन, रोनाल्ड रीगन की तुलना में और ऋषि सुनक, मार्गरेट थैचर की तुलना में शक्तिहीन हैं। नौकरशाही कॉर्पोरेट के वश में है। पर भारत में अस्थिरता चीन को मजबूत करेगी और पश्चिम यह भी नहीं चाहेगा।

दैनिक जागरण

Date: 22-05-24

घोर लापरवाही से उपजी त्रासदी

तरुण गुप्त

संसदीय चुनावों की गहमागहमी के बीच स्थानीय निकायों की कार्यप्रणाली की चर्चा कुछ असंगत सी लग सकती है। यहां मैं स्पष्ट करना चाहता हूं कि जब कर्तव्यों की उपेक्षा जीवन के लिए घातक सिद्ध होने लगे तो फिर मौके और दस्तूर की परवाह नहीं की जानी चाहिए। बीते दिनों मुंबई में एक होर्डिंग गिरने से जुड़ी भयावह त्रासदी में 16 लोग असमय काल कवलित हो गए तो सैकड़ों लोग घायल हुए। यह प्रकरण इसका उदाहरण है कि जिन गलतियों को प्रायः हम मामूली समझकर अनदेखा कर देते हैं, उनके कितने विध्वंसक परिणाम सामने आ सकते हैं।

हमारे नगर निगमों की सबसे बदतर कार्यप्रणाली को चिह्नित करने की बारी आए तो इसे लेकर अजीब दुविधा होती है। क्या वे कचरा प्रबंधन या ड्रेनेज के मोर्चे पर सबसे अधिक नाकारा हैं अथवा बेसहारा या पालतू जानवरों के नियमन को लेकर सबसे अधिक नाकाम, सड़क पर गड्ढे भरने में लाचार अथवा अतिक्रमण पर अंकुश लगाने में असहाय या फिर झुग्गी बस्तियों के विस्तार पर विराम लगाने में अक्षम या सामान्य स्वच्छता को लेकर लापरवाह? इसमें कोई भी विकल्प चुना जा सकता है, क्योंकि हर मोर्चा एक दूसरे के मुकाबले और बदतर आंका जा सकता है। इसी क्रम में होर्डिंग-बिलबोर्ड्स जैसे आउटडोर विज्ञापनों के लचर प्रबंधन को भी जोड़ा जा सकता है। यह घोर उपेक्षा एवं जानबूझकर की जाने वाली लापरवाही का प्रत्यक्ष प्रमाण है।

स्थापित व्यवस्था यही है कि नगर निगम आउटडोर विज्ञापनों के लिए निविदाओं के माध्यम से अनुबंध करते हैं। इस व्यवसाय में निगम से अनुबंध हासिल करने वाले ठेकेदार विज्ञापनदाताओं से तो मोटी रकम वसूलते हैं, लेकिन नगर निगम को उसके अनुपात में मामूली राशि अदा करते हैं। जो भी लोग इस व्यवसाय में संलग्न हैं, उनके लिए उचित प्रतिफल के अधिकार को कोई नकार नहीं सकता।

एक समाज के रूप में हम इतने परिपक्व तो हो ही गए हैं कि निजी लाभ को तिरस्कार के रूप में देखने के बजाय इसे सराहना योग्य मानते हैं। हालांकि, इसके साथ ही सरकारी खजाने में अधिक योगदान की संभावनाओं को भी तलाशा जाना चाहिए। इसलिए प्रयास इसी दिशा में होने चाहिए कि निजी लाभ और राज्य की आय के बीच उचित संतुलन साधा जा सके। अद्यतन डाटा का अभाव भी ऐसे उद्यमों की अस्पष्ट एवं बेतरतीब प्रकृति को रेखांकित करता है।

प्राधिकरणों के पास शहर में मौजूद कुल साइट्स का बमुश्किल ही कोई सारगर्भित रिकार्ड होता है। प्रत्येक होर्डिंग, बिलबोर्ड का उसकी लोकेशन, आयाम-आकार-प्रकार और अन्य प्रासंगिक बिंदुओं के साथ व्यापक रिकार्ड रखना आखिर कितना कठिन है? वास्तविकता यही है कि निगम द्वारा आधिकारिक रूप से स्वीकृत होर्डिंग्स की संख्या से कई गुना अधिक होर्डिंग्स अवैध रूप से लगे रहते हैं। इससे राजस्व की स्वाभाविक क्षति तो होती ही है, वहीं अनधिकृत लोग इस व्यवसाय में प्रवेश कर जाते हैं।

मुंबई होर्डिंग हादसे ने इस ओर ध्यान आकर्षण करने के साथ ही आवश्यक आक्रोश भी उत्पन्न किया है। नि:संदेह यह इस तरह की सबसे भयावह दुर्घटना है, किंतु यह पहली ऐसी त्रासदी नहीं। तेज हवाओं और तूफानों में होर्डिंग्स का उड़ जाना साल भर चलता ही रहता है। प्राधिकरणों द्वारा सुरक्षा मानकों का शायद ही कभी गंभीरता से जायजा लिया जाता है। जबकि उपयुक्त आकार, ढांचे की मजबूती और ऐसी तकनीकी कसौटियां पहले से निर्धारित होनी चाहिए, ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि तेज हवाओं में ढांचा उड़ न जाए। ऐसा प्रतीत होता है कि सुरक्षा से जुड़े मानक या तो नदारद हैं या फिर प्रभावी रूप से लागू ही नहीं हैं।

यह तो एक सर्वविदित तथ्य है कि एक्सप्रेसवे पर होर्डिंग्स लगाने की अनुमति नहीं है। चूंकि उनके चलते चालकों का ध्यान भंग होना घातक सिद्ध हो सकता है, लिहाजा इस पर प्रतिबंध है। उदाहरण के लिए दिल्ली-मेरठ एक्सप्रेसवे इस नियम की उपेक्षा का प्रतीक है। इसमें किसकी गलती है? उस ठेकेदार की, जिसने ढांचा खड़ा किया या जमीन के मालिक की, जिसने अपनी जमीन दी या फिर विज्ञापनदाता की? वस्तुतः, यह सामूहिक जिम्मेदारी का मामला है। इस क्रम में

कार्रवाई का दायित्व भी राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण से लेकर स्थानीय पुलिस और प्रशासन समेत विभिन्न इकाइयों का है।

वास्तविकता यह है कि जहां एक ओर परस्पर दोषारोपण की स्थित बनती है, वहीं जिन इकाइयों पर नियमों का अनुपालन कराने की जिम्मेदारी है, इसमें उनकी विफलता भी समग्रता में झलकती है। ऐसा लगता है कि कुख्यात रेत खनन माफिया की तरह एक होर्डिंग माफिया भी उभरता दिख रहा है। कानून को ताक पर रखते हुए वे तंत्र को भ्रष्ट बनाते हैं, विज्ञापन माध्यम को बदनाम करते हैं, सरकारी खजाने को क्षति पहुंचाते हैं और लोगों की सुरक्षा को खतरे में डालते हैं। इस आलेख का आशय आउटडोर विज्ञापन जैसे प्रभावी माध्यम का विरोध करना कतई नहीं है। असल में इस माध्यम के असंगठित-अनियमित स्वरूप, व्यापक भ्रष्टाचार और सुरक्षा मानकों की अवहेलना सालने वाली है। इसके अतिरिक्त, दोषियों में कानून के भय का अभाव और अधिकारियों के साथ साठगांठ दुखदायी हो गई है। इसकी स्वाभाविक परिणति नागरिकों में गहराते असुरक्षाबोध के रूप में प्रकट होती है।

स्मरण रहे कि केवल समृद्धि ही विकास के लिए पर्याप्त आधार नहीं है। यह केवल एक सराहनीय आरंभिक बिंदु है। जीवन की गुणवत्ता और मानव विकास सूचकांक आवश्यक कसौटियां हैं। अभी बहुत कुछ किया जाना शेष है। अस्वाभाविक मृत्यु और जिस जनहानि से बचा जा सके, उसे हरसंभव प्रकार से न्यूनतम किया जाए। यह सही है कि यहां चर्चा नगर निगम से जुड़ी कुछ प्रमुख जिम्मेदारियों की हो रही है। यह भी सत्य है कि नगर निकाय राज्य सरकारों के अधीन काम करते हैं। किंतु यदि शासन के ये दो स्तंभ तमाम चुनौतियों का समाधान निकालने में विफल साबित हो रहे हैं तब फिर सर्वोच्च विधायी संस्था एवं चिंतनशील इकाई के रूप में संसद को ही पहल कर कोई राह दिखानी होगी।

आज हमारा दिल मुंबई के असहाय पीड़ितों के लिए द्रवित है, लेकिन कुछ समय बाद हम उनके शोक एवं पीड़ा को विस्मृत कर देंगे। यही मानव स्वभाव है, किंतु हमारे जेहन में यह हमेशा कैद रहना चाहिए। शोक संतप्त परिवारों को स्थितियों से सामंजस्य बिठाने में पता नहीं कितना समय लगेगा? क्या समय के साथ इतनी भीषण त्रासदियों से भी उबर पाना संभव होता है? मैं आशा तो यही करता हूं।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 22-05-24

बंद हों फर्जी समीक्षाएं

संपादकीय

इस डिजिटल जमाने में फर्जी खबरों (Fake news) और गलत सूचनाओं के व्यापक मसले ने दुनिया भर के नीति-नियंताओं का ध्यान आकर्षित किया है।

डिजिटल स्वरूप में सूचनाओं की बाढ़ ने खबरों और सूचनाओं के उपभोग करने के लोगों के तरीके को मौलिक रूप से बदल दिया है और इससे लोगों के लिए यह पता करना मुश्किल हो गया है कि क्या फर्जी है और क्या प्रामाणिक।

ऐसे समय में जब दुनिया फर्जी खबरों से निपटने के लिए जूझ रही है, डिजिटलीकरण का एक और पहलू नियामकों और अन्य हितधारकों को परेशान कर रहा है, वह है ई-कॉमर्स वेबसाइटों पर फर्जी ऑनलाइन समीक्षाओं की समस्या।

इस संबंध में, उपभोक्ता मामलों का विभाग (DCA) उपभोक्ता समीक्षाओं के लिए गुणवत्ता मानकों और नियम-कायदों को लागू करने की तैयारी कर रहा है, और ऐसे गुणवत्ता मानदंडों के अनुपालन को अनिवार्य बनाने का स्वागत किया जाना चाहिए।

डीसीए की सभी हितधारकों या साझेदारों के साथ हुई बैठक में शामिल ई-कॉमर्स कंपनियों ने भी सरकार की इस पहल का समर्थन किया है। प्रस्तावित गुणवत्ता नियंत्रण आदेश (QCO) से संभवत: पूर्वग्रहों और पक्षपात के साथ उपभोक्ता समीक्षाओं को ऑनलाइन प्रकाशित करने, उनके संदेश को बदलने के लिए समीक्षाओं को संपादित करने या नकरात्मक समीक्षाओं को रोकने या हतोत्साहित करने से ई-कॉमर्स प्लेटफार्मों को रोका जा सकेगा।

एक बार इस तरह के नियम-कायदे लागू हो गए तो समीक्षा लिखने वालों की पहचान और सत्यापन की भी आवश्यकता हो सकती है। इसके अलावा, ऑनलाइन उपभोक्ता समीक्षाओं के लिए आईएस 19000:2022 मानक लागू करने की भी चर्चा है।

उपभोक्ताओं के ऑनलाइन व्यवहार को तय करने में समीक्षाओं की अहम भूमिका होती है। दूसरे लोगों की सिफारिशों को पढ़ना किसी दुकान में जाकर उत्पादों के परीक्षण और आजमाने के डिजिटल समकक्ष जैसा ही लगता है। इस संदर्भ में, ऑनलाइन समीक्षाएं उन उत्पादों की गुणवत्ता को जानने के एक विकल्प की तरह काम करती हैं, जिन्हें हम भौतिक रूप से जाकर नहीं जांच पाते।

खरीदारों और विक्रेताओं के बीच सूचना की असमानता को दूर कर और ऐसी जानकारियां प्रदान कर जिनका शायद अन्यथा खुलासा नहीं हो सकता, ऑनलाइन समीक्षाएं एक मूल्यवान आर्थिक कार्य करती हैं।

एक वैश्विक अध्ययन से पता चलता है कि ऑनलाइन समीक्षाएं पेश करने वाली वेबसाइटों के लिए कन्वर्जन रेट यानी विजिट करने वाले उपभोक्ता के ग्राहक बनने की दर स्पष्ट रूप से बढ़ सकती है।

ग्राहक अधिग्रहण सुरक्षा वेंडर सीएचईक्यू की एक रिपोर्ट से पता चलता है कि ऑनलाइन समीक्षाओं ने साल 2021 में करीब 3.8 लाख करोड़ डॉलर के वैश्विक ई-कॉमर्स खर्च को प्रभावित किया है।

इसके अलावा, इंटरनेट और सोशल मीडिया पर विचारों के खूब आदान-प्रदान को देखते हुए कारोबारी और ऑनलाइन खुदरा विक्रेता अपने उत्पादों के बारे में उपभोक्ताओं की राय की निगरानी करने में सक्षम हैं।

दूसरी तरफ, फर्जी और प्रायोजित समीक्षाएं उपभोक्ताओं को गलत खरीदारी का निर्णय लेने के लिए प्रेरित करती हैं, जिससे बाजार के परिणाम विकृत हो जाते हैं। इससे ऐसे डिजिटल प्लेटफॉर्मों की विश्वसनीयता और भरोसे पर भी असर पड़ता है।

अक्सर फर्जी समीक्षाएं लिखने के लिए संदिग्ध यूजर्स और बॉट्स की सेवाएं ली जाती हैं ताकि किसी एक कंपनी या विक्रेता को फायदा हो। इंटरनेट पर सर्च रैंक एल्गोरिदम अक्सर ऑनलाइन समीक्षाओं पर निर्भर होते हैं, जिसकी वजह से किसी उत्पाद की दृश्यता और बिक्री पर असर पड़ता है।

यह विक्रेताओं के लिए अपने उत्पादों की रैंकिंग में हेरफेर के लिए एक मजबूत प्रोत्साहन है। हालांकि मध्यम अवधि में इस तरह की समीक्षाएं अक्सर बिक्री और राजस्व के आंकड़े को नुकसान पहुंचाती हैं क्योंकि आमतौर पर इनसे घटिया गुणवत्ता के उत्पादों को बढ़ावा मिलता है।

उदाहरण के लिए ई-कॉमर्स प्लेटफॉर्म पर फर्जी ऑनलाइन समीक्षाओं के बारे में राष्ट्रीय उपभोक्ता हेल्पलाइन पर दर्ज शिकायतों में साल 2018 से 2023 के बीच 366 फीसदी की आश्चर्यजनक बढ़त हुई है। फर्जी समीक्षाओं की पहचान करने व उन्हें हटाने और उपभोक्ताओं का भरोसा बनाए रखने की इस निरंतर लड़ाई में आर्टिफिशल इंटेलिजेंस की मदद लेना अनिवार्य हो गया है।

सामग्री विश्लेषण के तरीके का इस्तेमाल कर एआई फर्जी समीक्षाओं की पहचान करने में मदद कर सकती है। भुगतान वाली समीक्षाओं को प्रकाशित करने और प्रचार सामग्री के बारे में पूरी तरह से खुलासे की जरूरत के बारे में भी नियम-कायदे बनाने चाहिए। सरकार के प्रस्तावित नियम-कायदों की सफलता अंतत: इसके प्रभावी तरीके से क्रियान्वयन पर निर्भर करेगी।

Date: 22-05-24

वैश्विक मानकीकरण में भारत की भूमिका

अजय कुमार, (लेखक भारत के पूर्व रक्षा सचिव और आईआईटी कानपुर के विशिष्ट अतिथि प्राध्यापक हैं)

तेज तकनीकी प्रगति द्वारा आर्थिक वृद्धि को गति प्रदान करने के इस दौर में मानक निर्माण के परिदृश्य तथा संचालन में आमूलचूल बदलाव आया है। हर नए तकनीकी नवाचार को वैश्विक रूप से अपनाने के लिए मानकीकरण की आवश्यकता होती है।

बहरहाल अपनाने की गति, खासकर नवाचारी डिजिटल तकनीक के मामलों में अक्सर पारंपरिक मानक विकास प्रक्रिया पीछे रह जाती है। इससे कुछ मानक स्वत: निर्मित होने लगते हैं। उदाहरण के लिए विंडोज ऑपरेटिंग सिस्टम अथवा इंटेल सीपीयू प्रणाली।

तेज तकनीकी विकास ने वैश्विक मानकीकरण संस्थाओं के परिदृश्य को नया आकार दिया है। पारंपरिक संस्थाएं मसलन इंटरनैशनल ऑर्गनाइजेशन फॉर स्टैंडर्डाइजेशन (ISO), इंटरनैशनल इलेक्ट्रोटेक्निकल कमीशन (आईईसी) और इंटरनैशनल टेलीकम्युनिकेशन यूनियन (आईटीयू) देशों की सरकारों से बहुत अधिक प्रभावित थीं और उनकी जगह उद्योग जगत द्वारा संचालित संगठनों ने ले लिया जो विशिष्ट क्षेत्रों द्वारा संचालित थे।

उदाहरण के लिए इंटरनेट से संबंधित मानक अब प्रमुख तौर पर उद्योग जगत के नेतृत्व वाली इंटरनेट इंजीनियरिंग टास्क फोर्स (आईईटीएफ), वर्ल्ड वाइड वेब कंर्सोसे (डब्लयू3सी) तथा गैर लाभकारी आईकैन तथा अन्य संस्थाओं द्वारा तय किए जाते हैं।

इसी तरह थर्ड जनरेशन पार्टनरशिप प्रोजेक्ट (3जीपीपी) दूरसंचार मानकों में प्रमुख स्थिति में है। विशेष संस्थाओं की ओर यह बदलाव तेजी से बदलते उद्योगों की खास मांगों को लेकर प्रतिक्रिया देने में सक्षम है। तकनीकी विकास में अग्रणी कंपनियां इन मानक तैयार करने वाली संस्थाओं में दबदबा रखती हैं।

स्टैंडर्ड एसेंशियल पेटेंट्स (एसईपी) के मामले में पेटेंट नवाचारों के मानकीकरण से अच्छी खासी संपत्ति बनती है और अकेले 3जी तकनीक ने 23,000 एसईपी तैयार किए और राजस्व् में हजारों अरब डॉलर की राशि तैयार हुई।

विश्व व्यापार संगठन की उरुग्वे दौर की वार्ता के बाद जब आयात टैरिफ कम कर दिए गए तो मानकीकरण अंतरराष्ट्रीय व्यापार के लिए अहम हो गया।

कुछ सरकारें आयात को नियंत्रित करने के लिए मानकीकरण या तकनीकी नियमन करती हैं। इसके तहत स्थानीय स्तर पर परीक्षण और प्रमाणन किया जाता है। लागत बढ़ती है और बाजार पहुंच सीमित होती है।

विश्व व्यापार संगठन के तकनीकी व्यापार अवरोध (टीबीटी) का दूर करने के लिए समझौतों के बावजूद कमजोर प्रवर्तन इनके असर को सीमित करता है। परिणामस्वरूप मानक न केवल तकनीकी रूप से प्रासांगिक हैं बल्कि उनका भूराजनैतिक और सामरिक मूल्य भी है। इससे देश वैश्विक मानक निर्माण प्रक्रिया की होड़ में शामिल होते हैं। मानक प्रबंधन में भारत का प्रदर्शन मिलाजुला रहा है।

भारतीय मानक ब्यूरो अधिनियम 1986 से आशा की गई थी कि वह देश में विश्वस्तरीय मानक व्यवस्था कायम करेगा तथा सभी क्षेत्रों में मानक तैयार करने के लिए केंद्रीय सांविधिक ढांचा तैयार करेगा।

बहरहाल मानक निर्माण और प्रवर्तन दोनों में कमियां नजर आईं। भारत एक ऐसी व्यवस्था कायम करने में नाकाम रहा जहां घरेलू नवाचारों से घरेलू मानक तैयार किए जा सकें, वैश्विक मानक तो छोड़ ही दें। इसने 20,000 से अधिक भारतीय मानक तैयार किए लेकिन प्राय: वैश्विक मानकों का अनुकरण थे।

वह तकनीकी नवाचारों के मानक नहीं तैयार कर सका। मसलन टाटा टी के लेमिनेट पॉली पैक्स, टैली या फिनैकल जैसे सॉफ्टवेयर या जल संरक्षण अथवा समुद्र की सतह के नीचे खेती जैसे पारंपरिक व्यवहार। ये बताते हैं कि हम मानकीकरण के जरिए भारतीय नवाचारों को प्रोत्साहित करने का अवसर गंवा चुके हैं। भारतीय मानक ब्यूरो भारतीय मानकों को उद्योग जगत और सरकार द्वारा अपनाए जाने को लेकर भी संघर्ष करता रहा।

तमाम उपलब्धता के बावजूद कई सरकारी निविदाएं अभी भी वैश्विक मानकों से संदर्भित होते। भारतीय मानक ब्यूरो अधिनियम के मुताबिक भारतीय मानक तैयार करने के लिए लाइसेंस लेना होता है, उन पर नियामकीय नियंत्रण होता है और इंसपेक्टर राज से जुड़े मामले भी हैं।

इसके चलते उद्योग जगत ने विरोध किया। 2013 तक कुछ ही भारतीय मानक तैयार हुए जबकि वैश्विक मानक भारत में भी लोकप्रिय बने रहे। इससे भारतीय विनिर्माताओं को नुकसान हुआ जबकि विदेशी कंपनियों के लिए भारतीय बाजारों में पहुंच आसान बनी रही।

सन 2013 में भारत में खराब गुणवत्ता वाली और असुरक्षित चीनी इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं की बाढ़ आ गई। ऐसे में इलेक्ट्रॉनिक्स और सूचना प्रौद्योगिकी मंत्रालय ने ने एक अनिवार्य पंजीयन ऑर्डर जारी किया जिसके तहत लैपटॉप, डेस्कटॉप, मोबाइल फोन, माइक्रोवेव ओवन और अन्य इलेक्ट्रॉनिक वस्तुओं के सुरक्षा मानक तय होने थे। तब पहली बार भारतीय मानक अधिनियम के तहत तकनीकी नियमन को पहली बार व्यापक तौर पर अपनाया गया।

उसने एक स्वनियमन योजना पेश की जो लाइसेंस आधारित प्रणाली की स्थानापन्न थी। विनिर्माताओं को मान्यताप्राप्त प्रयोगशालाओं से जांच और प्रमाणन कराना होता उसके बाद ही उन्हें भारत में बिक्री की इजाजत मिलती। उल्लेखनीय बात यह है कि कुछ महीनों के भीतर ही इसे 90 फीसदी लोगों ने अपना लिया। इसकी शुरुआत कई के लिए अविश्वसनीय थी क्योंकि तत्कालीन बीआईएस अधिनियम केवल लाइसेंस आधारित तकनीकी नियमन करता था।

इसके बावजूद मंत्रालय ने एक स्वपंजीयन योजना उसी अधिनियम के तहत आरंभ की। इस योजना ने परीक्षण अधोसंरचना में निवेश को बढ़ावा दिया और विश्वस्तरीय परीक्षण आकर्षित किया ताकि उद्योग जगत की मांग पूरी हो सके।

योजना देश के मानक संचालन में निर्णायक बदलाव लाने वाली साबित हुई। इसकी कामयाबी के बाद बीआईएस ने 2016 में अधिनियम में बदलाव किया ताकि स्वनियमन और स्वप्रमाणन को प्रमुखता दी जा सके। तमाम उद्योगों में भारतीय मानकों को अपनाने को गति दी गई। यही वजह है कि अनिवार्य मानक वाले उत्पादों की संख्या 2023 तक 500 से अधिक हो गई और निकट भविष्य में यह 1500 से 2000 तक पहुंच सकती है।

बीआईएस को आगे चलकर मानक अपनाने की प्रक्रिया को सहज बनाना चाहिए। कड़ी निगरानी की व्यवस्था होनी चाहिए और पालन न करने वालों पर कड़ा जुर्माना लगाया जाना चाहिए। यह पारंपरिक रुख से अलग है जहां कठोर, जटिल और अधिक लागत के साथ शिथिल निगरानी होती थी। बीआईएस को मानकीकरण में सुधार लाने की जरूरत है।

देश का नवाचार परिदृश्य बीते दशक में नाटकीय ढंग से बदला है और करीब दो लाख से अधिक पंजीकृत स्टार्टअप सामने आई हैं। 2013-14 से 2022-23 के बीच पेटेंट आवेदन चार गुना बढ़े हैं। देश को स्वदेशी मानक विकसित करने की संस्कृति अपनानी चाहिए।

देश के मानकों को विश्वस्तरीय बनाने के लिए देश की 1.4 अरब की आबादी और कई लाख करोड़ रुपये के बाजार का इस्तेमाल किया जाना चाहिए। इसके लिए पहले हमें उद्योग जगत के नेतृत्व वाली और समुचित प्रतिकिया देने वाली मानक निर्माण संस्थाओं की जरूरत होगी। इसके लिए बीआईएस अधिनियम में संशोधन करने होंगे और उसे इनकी निगरानी करने वाला बनाना होगा।

सरकार को वैश्विक मानक निर्माण संस्थाओं में भारत की भागीदारी को बढ़ावा देना होगा। तीसरा, विदेश मंत्रालय भी भारतीय विशेषज्ञों को वैश्विक मानक निर्माण संस्थाओं में जगह दिलाने में मदद कर सकता है। खासतौर पर सॉफ्टवेयर और फिनटेक के क्षेत्र में ऐसा किया जा सकता है जहां भारतीय कंपनियों और स्टार्टअप का प्रदर्शन बेहतर है।

2014 में प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने 'जीरो डिफेक्ट जीरो इफेक्ट' का नारा दिया था। क्या भारत अपनी मेक इन इंडिया पहल को इस नए मानक से नहीं जोड़ सकता ताकि इसे वैश्विक मानक बनाया जाए? जरूरत है मानसिकता में बदलाव की।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 22-05-24

साइबर संसार में संवेदनशील समाज

पवन दुग्गल

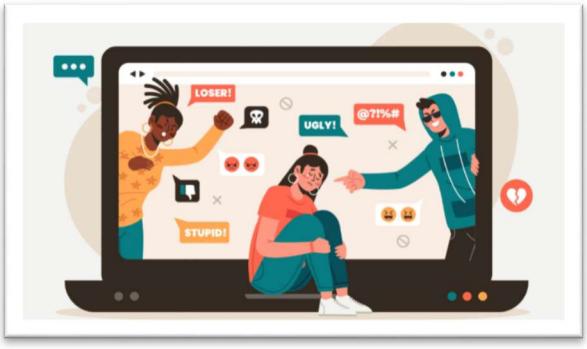

साइबर दुनिया में किसी को हद से अधिक कलंकित करके खुदकुशी के लिए मजबूर कर देना ट्रोलिंग का एक भयावह रूप है। दुर्भाग्य से तमिलनाडु की घटना इसी श्रेणी की है, जो हर संवेदनशील इंसान को झकझोर रही है। कोई मां जान-बूझकर अपने बच्चे का बुरा नहीं करती, लेकिन लोगों के ताने ने उस मां को इतना तोड़ दिया कि उसने खुद अपनी जान ले ली। इस ट्रोलिंग की शुरुआत अप्रैल के आखिरी हफ्ते में आए उस वीडियो से हुई, जिसमें पहली मंजिल पर लटके एक छोटे बच्चे को बचाने की सफल कोशिश होती दिख रही थी। बताया गया था कि चौथी मंजिल पर खड़ी मां के हाथों से वह बच्चा छिटककर नीचे गिर गया था। इस वीडियो के सामने आने के बाद से ही मां को सोशल मीडिया में लापरवाह बताया जाने लगा। अब खबर यह है कि लांछनों से तंग आकर उसने आत्महत्या कर ली।

अब तक हम यही सोचते थे कि ट्रोलिंग पश्चिमी देशों में ही होती है और अगर अपने यहां होती भी है, तो नामचीन शख्सियतों की। मगर अब तो यह आम जनजीवन का हिस्सा बनती जा रही है। इसका कारण यही है कि भारत में द ग्रेट इंडियन वोमिटिंग रिवॉल्यूशन (भारतीयों का वमन-क्रांति) चल रही है। अब लोग अपने विचार, डाटा, सोच और नजरिये की बिना यह सोचे इंटरनेट पर उल्टियां कर रहे हैं कि इसके कानूनी स्वरूप क्या होंगे? ट्रोलिंग भी एक तरह की उल्टी ही है, जिसमें सामने वाले व्यक्ति को बिना सोचे-समझे अपशब्द कहे जाते हैं। ऐसा करते हुए यह भी नहीं सोचा जाता कि व्यक्ति-विशेष के जीवन पर इसका क्या प्रभाव पड़ेगा?

अब ट्रोलिंग इसलिए भी बढ़ गई है, क्योंकि लोगों को पता है कि वे अनीतिपूर्ण हमले करने के बावजूद कानूनी गिरफ्त से बच सकते हैं। ट्रोलिंग रोकने के लिए अब तक अपने यहां कोई तयशुदा कानून नहीं बन सका है। देश में सन् 2000 का सूचना प्रौद्योगिकी कानून (आईटी ऐक्ट) जरूर है, लेकिन वह न तो ट्रोलिंग शब्द को परिभाषित करता है और न इस संदर्भ में कोई कानूनी समाधान देता है। दुखद यह है कि भारतीय दंड संहिता (आईपीसी) में भी इसका कोई जिक्र नहीं है। हां, स्टॉकिंग यानी लड़कियां अथवा महिलाओं का गलत इरादे से पीछा करने जैसे अपराधों का जिक्र आईपीसी में जरूर है और कुछ परिस्थितियों में स्टॉकिंग को ट्रोलिंग भी कह सकते हैं, लेकिन ट्रोलिंग की ज्यादातर घटनाएं स्टॉकिंग नहीं कही जा सकतीं। ट्रोलिंग में ट्रोलर्स दरअसल लक्षित व्यक्ति को गाली देते हैं, उसे नीचा दिखाते हैं, उस पर लांछन लगाते हैं और अपने दैनिक जीवन में रम जाते हैं, जबकि स्टॉकिंग का चरित्र इससे अलग होता है।

सूचना प्रौद्योगिकी कानून की सहायता से यदि ट्रोलिंग रोकने की कोशिश करें, तो धारा 67 कुछ हद तक हमारी मदद कर सकती है, क्योंकि जब किसी व्यक्ति को ट्रोल किया जाता है, तो इलेक्ट्रॉनिक माध्यम से कुछ ऐसे शब्द या कंटेंट प्रसारित किए जाते हैं, जिनको पढ़ने, सुनने या देखने के बाद लक्षित व्यक्ति पर नकारात्मक असर पड़ता है। मगर यह धारा मूलत: इलेक्ट्रॉनिक रूप से अश्लील सामग्रियों के प्रकाशन और प्रासरण से जुड़ी है, इसलिए ज्यादातर मामलों में पुलिस ट्रोलिंग में इसके इस्तेमाल से बचती है।

ट्रोलिंग से यदि मानहानि होती है, तो आईपीसी की धारा 499 और 500 का इस्तेमाल किया जा सकता है, लेकिन ये धाराएं भी इसलिए कारगर नहीं हो पातीं, क्योंकि ट्रोलिंग एक तरह से टिप्पणी है और मानहानि न होने पर ये धाराएं निष्प्रभावी हो जाती हैं। हालांकि, फर्जी अकाउंट से यदि ट्रोलिंग की जा रही है, तो जालसाजी और पहचान छिपाने के खिलाफ आईटी ऐक्ट की धारा 66-सी के तहत कार्रवाई हो सकती है और अगर ट्रोलिंग से गुमराह करने की कोशिश की गई है, तो धारा 66-डी लगाई जा सकती है।

इसी तरह, ट्रोलिंग में यदि झूठ लिखा जा रहा हो और लोगों को भ्रमित करने की मंशा दिखती हो, तो आईपीसी की धारा-468 और 469 के तहत कार्रवाई की जा सकती है, जिनमें सजा और जुर्माना, दोनों के प्रावधान हैं। और, अगर ट्रोलिंग के साथ स्टॉकिंग हो, तो कुछ हद तक आईपीसी-354 के तहत कार्रवाई हो सकती है। मगर ये भी ट्रोलिंग से निपटने के परोक्ष तरीके हैं, कोई प्रत्यक्ष उपाय नहीं। हालांकि, इसका यह अर्थ भी नहीं कि बतौर नागरिक हमारे पास कोई रास्ता नहीं है। आत्महत्या करने के बजाय हमें ट्रोलिंग की शिकायत साइबर क्राइम की वेबसाइट पर करनी चाहिए। इसके लिए 1930 हेल्पलाइन नंबर से भी मदद ली जा सकती है।

जब तक कोई समर्पित कानून न बने, तब तक ट्रोलर्स से सीधे मुकाबला करने से भी हमें बचना चाहिए। अगर आप इसके भुक्तभोगी बनते हैं, तो पहले अपने परिजनों को विश्वास में लें। इसकी शिकायत सोशल मंच प्रदान करने वाली कंपनी से

भी की जा सकती है। आईटी रूल्स 2021 के तहत सेवा देने वाली कंपनी से ट्रोलर्स के सोशल अकाउंट की शिकायत की जा सकती है, जिसमें अधिकतम 15 दिनों में कार्रवाई सुनिश्चित की गई है। अगर अश्लील शब्दों के साथ ट्रोल किया गया है, तो 24 घंटे के अंदर शिकायत के निवारण का प्रावधान आईटी कानून में है।

कुछ लोग तर्क देते हैं कि अपने देश में कानून बनाने का रास्ता काफी लंबा है, लेकिन ट्रोलिंग के मामले में हमें एक सुविधा हासिल है। दरअसल, सूचना प्रौद्योगिकी कानून की धारा-87 केंद्र सरकार को इस कानून के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए तमाम प्रावधान अपनाने का अधिकार देती है। इसका उपयोग किया जा सकता है। फिर, हमें दूसरे देश का मुंह नहीं ताकना चाहिए, क्योंकि भारत की जमीनी हकीकत अन्य राष्ट्रों से अलग है। चेन्नई मामले में ही मां को कोसा गया, जबकि पश्चिमी देशों में मां और बच्चे का संबंध अपने यहां से अलग होता है। चूंकि हमारी संस्कृति, हमारे मूल्य व परिवेश विदेश से अलग हैं, इसलिए ट्रोलिंग को लेकर हमारा कानून भी अलग होना चाहिए।

ज्यादातर मामलों में ट्रोलर्स वीपीएन, यानी वर्चुअल प्राइवेट नेटवर्क का इस्तेमाल करते हैं, जिससे वे अपनी पहचान छिपा लेते हैं, इसलिए इनको पकड़ने के लिए हमें खास उपाय अपनाने होंगे। यहां पुलिस अधिकारियों को भी संवेदनशीलता दिखानी होगी। उनको भुक्तभोगियों का दर्द महसूस करना होगा। हालांकि, आम लोगों को भी साइबर सुरक्षा को अपनी जीवनशैली का हिस्सा बनाना चाहिए। तभी वे साइबर अपराध का शिकार बनने से बच सकेंगे।